ब्रिटिश औपनिवेशिक मानसिकता का भारतीय मानस पर प्रभाव

डॉ. शिवचन्द सिंह रावत
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर, चमोली, उत्तराखण्ड

शोध–सार

अंग्रेजों द्वारा भारत को गुलाम बनाने का प्रभाव केवल हमारी अर्थव्यवस्था पर ही नहीं पड़ा, अपितु हमारा समाज, संस्कृति, शिक्षा आदि सभी इससे प्रभावित हुए हैं। औपनिवेशिक शासन के दौर में अंग्रेजों ने हमें न केवल शारीरिक रूप से गुलाम बनाया, बल्कि मानसिक रूप से भी हम उनके गुलाम बन गये। हमारे सोचने, बोलने और यहाँ तक कि चिंतन करने में भी गुलामी का प्रभाव इतना गहरा हो गया कि आज तक भी हम उससे मुक्त नहीं हो पाये हैं। यही गुलामी हमारे दिलो–दिमाग पर आज भी इस तरह छायी हुई है कि हम जाने–अनजाने आज भी अंग्रेजी सोच को जब–तब व्यक्त करते रहते हैं। प्रस्तुत लेख में इसी औपनिवेशिक मानसिकता व उसके प्रभाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

भारत में अंग्रेजों के आगमन तथा यहाँ व्यापार करने से लेकर शासक बनने तक के बारे में भारतीयों के अलग–अलग मत रहे हैं। इनमें से कुछ का मानना है कि भारत पर अंग्रेजों का शासन एक वरदान रहा है, जबकि अन्य का मानना है कि अंग्रेजों ने भारत का शोषण किया है। इसी प्रकार के वैचारिक मतभेदों से स्पष्ट होता है कि आजादी से पूर्व जहाँ एक वर्ग ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का समर्थन करता था तथा इसे भारत के लिए वरदान मानता था, वहीं दूसरा वर्ग औपनिवेशिक शासन को शोषणकारी तथा भारत की अवनति, भुखमरी, बेरोजगारी आदि के लिए उत्तरदायी मानता रहा है। अतः स्पष्ट है कि कहीं न कहीं भारतीय मानस आज भी औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रसित है। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को वरदान मानने वालों का कहना है कि भारतीय राष्ट्रवाद के उदय में ब्रिटिश शासन का योगदान है तथा वे यूरोपीय उपनिवेशवाद को इसके लिए उत्तरदायी मानते हैं अर्थात राष्ट्रवाद पश्चिम की देन है तो कहा जा सकता है कि जिन देशों में यूरोपीय उपनिवेशवाद प्रभावी नहीं रहा है तो क्या वहाँ राष्ट्रवाद का जन्म नहीं हुआ। तुर्की में राष्ट्रीयता का उदय होना क्या इसका अपवाद नहीं है?

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को वरदान मानने वाले प्रमुख व्यक्तियों में स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रारम्भिक उदारवादी भी रहे हैं। ये उदारवादी न केवल अंग्रेजी साम्राज्य को बनाये रखने के पक्ष में थे, अपितु उसके सुदृढ़ होने के भी पक्षधर थे। उन्हें डर था कि अंग्रेजों के जाने से अव्यवस्था फैल जायेगी। उनके लिए अंग्रेजी राज्य शाँति और व्यवस्था का द्योतक था और भारत में लम्बे समय तक इसका बना रहना आवश्यक था। इसी भावना को व्यक्त करते हुए गोखले ने कहा था, ''अंग्रेज नौकरशाही कितनी बुरी क्यों न हो'..... परन्तु आज केवल अंग्रेज ही व्यवस्था बनाए रखने में सफल हैं और व्यवस्था के बिना कोई उन्नति संभव नहीं''। इस उदारवादी दल के लोगो का वास्तव में यही विश्वास था कि उन्नति केवल अंग्रेजों की देखरेख में ही संभव है, इसीलिए ये लोग क्राउन के प्रति राजभक्त थे। एक बार कांग्रेस अध्यक्ष बदरूद्दीन तैयबजी ने कहा था, ''महारानी की करोड़ों प्रजा में से कोई अन्य लोग इतने राजभक्त नहीं जितने भारतीय शिक्षित लोग।''[1] अतएव ये लोग अंग्रेजी साम्राज्य को शक्तिहीन बनाने को उद्यत नहीं थे, क्राउन के प्रति राजभक्ति उनका राजनैतिक धर्म था। समकालीन कांग्रेसी विश्वास करते थे कि अंग्रेज न्यायप्रिय लोग हैं और वे भारत से न्याय करेंगे। यद्यपि उदारवादी कांग्रेसी अंग्रेजों के प्रति राजभक्त थे, किन्तु अंग्रेजी अधिकारी वर्ग का कांग्रेस के प्रति दृष्टिकोण अच्छा नहीं था। प्रारम्भ में सरकारी रूख अवश्य तटस्थता का रहा, किन्तु शीघ्र ही अंग्रेजी प्रशासक वर्ग कांग्रेस की समाप्ति की कामना करने लगा। कर्जन ने तो यहाँ तक कह दिया था कि ''कांग्रेस अपने पतन की ओर लड़खड़ाती हुई जा रही है, और उसकी इच्छा है कि वह इसकी शाँतिमय मृत्यु में सहायता करे।''[2]

यह औपनिवेशिक मानसिकता का ही परिणाम रहा है कि प्राचीन भारतीय इतिहास और समाज के स्वरूप के बारे में कई पाश्चात्य विद्वानों का मानना है कि प्राचीन काल में भारतीयों को इतिहास का कोई बोध नहीं था, विशेषकर काल और तिथिक्रम का। साथ ही उनका यह भी मानना रहा है कि प्राचीन काल से ही भारत के लोग निरंकुश शासन के आदी रहे हैं। ये निष्कर्ष ब्रिटिश उपनिवेशवाद के समर्थक विद्वानों द्वारा दिये गये हैं, जिससे कि वे भारत में औपनिवेशिक शासन को न्यायसंगत ठहरा सकें। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि भारत के कई तथाकथित बुद्धिजीवी भी इसी बात को मानते रहे हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना देना आवश्यक है कि भारतीयों के इतिहास बोध का सर्वोत्तम प्रमाण है महाभारत में दी गई इतिहास की परिभाषा, जिसमें इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण की स्पष्ट झलक मिलती है। महाभारत में एक पुरानी रूचिकर कथा, जिससे हमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की शिक्षा मिलती हो, इतिहास कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में भारतीय शिक्षाप्रद तथा भावी जीवन में काम आने वाले अनुभवजन्य घटनाओं को ही इतिहास के अन्तर्गत रखते थे तथा यह तथ्य भी अब स्पष्ट हो चुका है कि प्राचीन भारत में गणतंत्रीय शासन की परंपरा रही है। जहाँ तक ब्रिट्रेन का प्रश्न है तो यह सर्वविदित है कि आज भी वहाँ राजतंत्र स्थापित है, भले ही वह संवैधानिक राजतंत्र हो, किन्तु है तो राजतंत्र ही। जिस इंग्लैण्ड ने कभी गणतंत्र को देखा ही नहीं उसे हमने उच्चकोटि के प्रजातंत्रात्मक शासन का पुरोधा मान लिया तो गलती किसकी है? निश्चित ही हमारी औपनिवेशिक सोच की।

जहाँ तक भारतीय इतिहास के प्रति उपनिवेशवादियों के दृष्टिकोण की बात है तो यह स्पष्ट है कि उन्होंने भारतीय इतिहास की जो व्याख्या की है उसका उद्देश्य भारतीयों के चरित्र और उपलब्धियों को नीचा दिखाना तथा औपनिवेशिक शासन को न्यायोचित ठहराना था। उन्होंने यह कह कर कि भारत में एकछत्र, निरंकुश शासन की परंपरा रही है, अपनी उस शासन पद्धति को न्यायोचित ठहराने की कोशिश की है, जिसमें सभी शक्तियाँ

वायसराय के हाथों में केन्द्रित रहती थी। भारतीयों के चरित्र के बारे में कहा गया कि वे केवल परलोक की चिन्ता में डूबे रहते हैं, अतः उनके इहलौकिक जीवन की देखभाल ब्रिटिश लोग नहीं करेंगे तो कौन करेगा? इसी तरह कहा गया कि भारतीय को अतीत में स्वशासन का कभी कोई अनुभव नहीं रहा है, अतः वे वर्तमान में अपना शासन कैसे कर पायेंगे? इस तरह ऐसे सभी निष्कर्ष यही दर्शाते हैं कि भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन न्यायोचित है। केवल ब्रिटिश साम्राज्य के समर्थक अंग्रेज ही यह बात कहें तो ठीक है, किन्तु आश्चर्य तब होता है जबकि भारतीय आपैनिवेशिक मानसिकता से ग्रसित भारतीय भी यह कहते नहीं थकते कि यदि अंग्रेज न होते तो भारत में रेलवे का विकास न होता। वे इस तथ्य को भूल जाते हैं कि अंग्रेजों ने भारत में रेलवे का विकास भारतीयों की सुविधा के लिए बल्कि अपने व्यापार को बढ़ाने तथा शीघ्रता से आवश्यकता पड़ने पर आसानी से सेना को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के लिए किया था। अब उसका कुछ लाभ भारतीय जनमानस को मिल गया तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि रेल का विकास भारतीयों के हित के लिए किया गया था। यह तो वही बात है कि किसी ग्राम में कोई संपन्न जमींदार यदि अपने आने–जाने के लिए अपने घर तक सड़क मार्ग बनवाता है तो निश्चित ही उसका कुछ उपयोग अन्य ग्रामवासी भी करेंगे ही, किन्तु इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि जमींदार ने ग्रामवासियों के हित के लिए सड़क का निर्माण किया है। इस प्रकार भारत में अंग्रेजों द्वारा रेल–सेवा उपलब्ध कराने का एकमात्र उद्देश्य यह था कि भारत के कोने–कोने तक यूरोपीय माल को पहुँचाया जा सके। साथ ही दूसरा लाभ उन्हें यह था कि भारत के दूर–दराज इलाकों से भी कच्चे माल को बंदरगाह तक आसानी से पहुँचाया जा सकता था, जहाँ से उसे ब्रिटेन के कारखानों की जरूरतें पूरी करने के लिए भेजा जाता। इस प्रकार यह स्प्ष्ट है कि रेल–सेवा का विकास अंग्रेजी शासन को और मजबूत करने बनाने के लिए किया गया था।

भारत में रेलवे के विकास के सन्दर्भ में थियोडोर मोरिसन का कहना था कि 'रेलवे में पूँजी लगाने से भारत में एक अन्य उद्योग का आरम्भ हुआ, जिसमें नियुक्तियों के अवसर उत्पन्न हुए तथा भारत में औद्योगिक समृद्धि का युग प्रस्तुत हुआ। मोरिसन का यह भी कहना है कि रेलवे के लिए भारत के लिए ऋण सस्ती दर पर मिला, परन्तु याद रहे कि रेलवे और सिंचाई परियोजनाएँ मुख्य रूप से केवल इंग्लैण्ड के हित में बनाई गई थीं। चूँकि इंग्लैण्ड का भारतीय अर्थव्यवस्था पर अधिकार था, इसलिए इससे भारत का औद्योगीकरण नहीं हुआ, क्योंकि रेलों का सभी सामान इंग्लैण्ड से खरीदा गया (इंजन से लेकर माल ढोने के डिब्बे तक), साथ ही न ही इससे भारत में नियुक्तियों के अवसर बढ़े तथा न ही इससे अन्य भारतीय उद्योगों का विकास हुआ, बल्कि इससे भारत में बेरोजगारी की समस्या और बढ़ गई थी, क्योंकि अब रेल के जरिए इंग्लैण्ड का बना सूती कपड़ा हर जगह पहुँचने लगा, जिससे स्थानीय बुनकरों का धंधा ठप्प हो गया। रेलवे के विकास के सन्दर्भ में जी0वी0 जोशी ने कहा था कि '' रेलवे दरअसल ब्रिटिश उद्योगों के लिए भारत की तरफ से दी जाने वाली सहायता है।'' तिलक ने इस पर टिप्पणी की थी कि ''यह दूसरे की पत्नी के सिंगार–पटार का खर्च उठाने जैसी बात है।'' [3]

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में शिक्षा के विकास के सन्दर्भ में भी अनेक मत हैं। यद्यपि अंग्रेजों ने भारत में आधुनिक शिक्षा का विकास किया, किन्तु इस तथ्य पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि भारत में अंग्रेजी शिक्षा के विकास का मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था साथ ही मैकाले का मुख्य उद्देश्य भारतीयों की एक ऐसी श्रेणी उत्पन्न करना था जो ''रक्त और रंग से भारतीय हो, परन्तु अपनी प्रवृत्ति, विचार, नैतिक मानदण्डों तथा प्रज्ञा से अंग्रेज हों,'' अर्थात वह ब्राउन रंग के अंग्रेज बनाना चाहता था। यह भी उल्लेखनीय है कि वह भारत से मूर्तिपूजा को भी समाप्त करना चाहता था।[4] वास्तव में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का एकमात्र उद्देश्य था–भारत में व्यापारिक कंपनियों और साथ ही ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन–व्यवस्था के लिए लिपिक वर्ग को तैयार करना। अंग्रेजों की इच्छा थी कि पाश्चात्य शिक्षा व विचारों के प्रभाव से ऐसे भारतीय तैयार करना जो बौद्धिक दृष्टि से गुलाम हों।[5] इस सन्दर्भ में मीनाक्षी सहाय लिखती हैं कि राजाराम मोहन राय जैसे प्रगतिशील भारतीय और उनके दल वाले मैकाले के घोर समर्थक थे। ..... राजाराम मोहन राय भारतीय राजनीति के उदारपंथ के अग्रदूत माने जाते हैं। इस उदार पंथ ने पाश्चात्य शिक्षा को आदर्श माना और अंग्रेजी भाषा की उच्चता पर बल दिया।[6] इस प्रकार की पाश्चात्य शिक्षा का एक प्रभाव यह हुआ कि पढ़ा लिखा वर्ग अपने को अंग्रेज मानने लगा। अब उसे अपने पारंपरिक व्यवसाय अपनाने में ग्लानि महसूस होने लगी साथ ही वह अपनी संस्कृति से दूर होने लगा। वह ऐसी स्थिति में में पहुँच गया जहाँ न वह पूरा अंग्रेज ही बन पाया और न भारतीय रह पाया। स्वयं तब गाँधीजी की भी यही स्थिति थी जब वह इंग्लैण्ड से वकालत की शिक्षा पूरी करके भारत लौटे थे। वह पाश्चात्य शिक्षा से इतने प्रभावित थे कि उन्हें विश्वास ही नहीं होता था कि अंग्रेजों जैसे न्यायप्रिय, सभ्य लोग दक्षिण अफ्रीका में ऐसे अत्याचार कर सकते हैं। इसीलिए वे दक्षिण अफ्रीका में 'नेटाल एडवर्टाइजर' को चिट्ठी में लिखते हैं ''क्या यही ईसाइयत है, यही न्याय है, इसी को सभ्यता कहते हैं?''[7] ये शब्द उनके अंग्रेजों पर भारी भरोसे को दर्शाते हैं। जहाँ उन्हें विश्वास ही नहीं होता है कि अंग्रेज ऐसा भी कर सकते हैं।

तत्कालीन भारत में शिक्षा के महत्त्वपूर्ण साधन मकतब, मदरसे आदि थे, जिनके बारे में कहा जा सकता है कि आज की तरह पूर्णरूप से औपचारिक शिक्षा व्यवस्था नहीं थी, किन्तु फिर भी घर और समाज में शिक्षा की अनौपचारिक पद्धतियाँ प्रचलित थीं। इसीलिए औपचारिक शिक्षा पद्धति के अभाव के कारण विदेशियों ने यह प्रचारित किया कि भारतीय अंधकार में डूबे हुए, अशिक्षित व असभ्य थे। जबकि यह पूर्णतः असत्य था, क्योंकि शिक्षा की अनौपचारिक पद्धतियों के साथ ही लोग अपने व्यवसाय से सम्बन्धित एवं परंपरागत संस्कृति की शिक्षा भी ग्रहण करते थे।

पाश्चात्य शिक्षा का भारतीय समाज पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि जो भारतीय इस प्रकार की शिक्षा ग्रहण करते थे, वे अपने को समाज से अलग मानने लगे। अपने को औरों से श्रेष्ठ समझने लगे। अब उन्हें आम जनमानस के साथ उठना–बैठना खलने लगा और यह पढ़ा–लिखा वर्ग समाज से कट गया। साथ ही इसका दुष्प्रभाव यह भी हुआ कि अपनी महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप रोजगार न मिलने से यह वर्ग कुंठित रहने लगा। इस सन्दर्भ में मीनाक्षी सहाय भी कुछ इसी तरह लिखती हैं कि ''अंग्रेजी भाषा में शिक्षित व्यक्ति स्वयं को अन्य लोगों से भिन्न मानने लगे। उनमें व साधारण लोगों

के बीच दरार पड़ गई। साधारण जनता ने ऐसे बुद्धिजीवियों को 'आंग्लीयता का उपासक' और राष्ट्रीय भावनाओं से शून्य समझा। यह शिक्षित वर्ग पाश्चात्य उदारवाद को सही अर्थों में समझने में असमर्थ रहा।[8] निश्चित ही यह औपनिवेशिक मानसिकता का ही प्रभाव था कि अनेक भारतीय जो या तो नई शिक्षा पद्धति के अधीन शिक्षित हुए थे अथवा उसके लाभों को महत्त्वपूर्ण मानते थे, वे ब्रिटिश प्रणाली के प्रबल समर्थक बने।

औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रसित मानस का यह भी मानना रहा है कि ब्रिटिश शासन के प्रभाव से भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण हुआ तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भारत में आधुनिक परिवर्तन हुए, परन्तु इस सन्दर्भ में यह स्मरण रहे कि परिवर्तन एक प्राकृतिक क्रिया है तथा भारत में सामाजिक तथा दैनिक जीवन की प्रक्रिया में भी परिवर्तन आते ही भले ही अंग्रेजों से हमारा सम्बन्ध स्थापित होता अथवा नहीं। अंग्रेजों के जाने के पश्चात भी हमारे जीवन पर विदेशी प्रभाव उसी प्रकार हो रहा है, जैसा कि शेष संसार पर। यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि जिन देशों में अंग्रेज नहीं भी गये वहाँ भी पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव देखने को मिलता है। अतएव सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव केवल अंग्रेजों के कारण नहीं हैं, अपितु सम्पूर्ण विश्व पर भी इसी तरह का प्रभाव देखने को मिलता है।[9]

राष्ट्रीय चेतना की उत्पत्ति राष्ट्रवाद का जन्म तथा राष्ट्रीय आंदोलन के प्रारम्भ के लिए प्रायः पश्चिमी आधुनिक शिक्षा प्रणाली को (जिसे अंग्रेजों ने भारत में शुरू किया था) श्रेय दिया जाता है। परन्तु यह भावना एवं विश्वास वास्तविकता से दूर है, यदि इस शिक्षा की नींव न रखी जाती तो क्या राष्ट्रभावना एवं चेतना की उत्पत्ति न होती? क्या तब भारत विदेशी शासन के विरूद्ध आवाज न उठाता? क्या वैसी स्थिति में विदेशी शासन के विरूद्ध असंतोष नहीं पनपता? चीन, फारस, यूनान, तुर्की और अन्य देशों के इतिहास के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि जिन देशों में अंग्रेजी शिक्षा का कोई अस्तित्व नहीं था वहाँ भी राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।[10] अतः यह मान लेना कि पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से ही भारत में राष्ट्रवाद का जन्म हुआ, भ्राँतिपूर्ण है, फिर भी वास्तविक रूप से पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव को कुछ आंकड़ों से समझा जा सकता है। प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारतीय समाज में पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त वर्ग की संख्या अत्यंत सीमित थी। भारत में अंग्रेजों द्वारा स्थापित आधुनिक शिक्षा की प्रगति काफी अवरूद्ध सी रही और भारतीय जनता की उन्नति की दृष्टि से वह प्रगति असंतोषजनक भी थी। आधुनिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश शासन को कार्यकर्ता देना था, इसलिए जनसाधारण की शिक्षा की पूर्णतः उपेक्षा की गई थी। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि सौ साल के ब्रिटिश शासन के उपरांत भी 1911 ई0 में भारतीय आबादी के 94 प्रतिशत लोग निरक्षर थे और 1931 ई0 में 92 प्रतिशत। प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा हेतु प्रवेश प्राप्त करने वालों में से केवल पाँचवें भाग से भी कम लोग ही अंतिम कक्षा तक पहुँचते थे। 1941–42 में उच्च शिक्षण संस्थानों के अध्येताओं की संख्या 159,254 थी, जो कुल जनसंख्या की 0.5 प्रतिशत थी।[11] अतः प्रश्न उठता है कि इतना अल्प शिक्षित वर्ग जो कि स्वयं ही कुंठा से ग्रसित रहता था तथा अंग्रेजियत से रंगा हुआ था, कैसे भारत के विशाल जनमानस को प्रभावित कर सकता था? ऐसी स्थिति में अंग्रेजी शिक्षित वर्ग के राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान को समझा जा सकता है। इतना ही नहीं पाश्चात्य शिक्षा के दुष्प्रभाव को स्पष्ट करते हुए आधुनिक शिक्षा का एक दुभाग्यपूर्ण प्रभाव यह भी हुआ कि इससे हिंदू व मुसलमानों के बीच वैमनस्य बढ़ा। मुस्लिम वर्ग के बहुत सीमित अंश ने आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की और वह राजनीति के प्रति उदासीन रहा। प्रश्न यह भी है कि 1930 ई0 तक भारत की केवल 2 प्रतिशत जनता ही अंग्रेजी भाषा की शिक्षा प्राप्त कर सकी थी तो क्या ऐसे में राष्ट्रवाद की सफलता इन सीमित लोगों की ही देन थी? क्या यह तर्कसंगत है। जबकि बिपिनचंद्र पाल मानते हैं कि भारत का राष्ट्रीय आंदोलन साम्राज्यवाद और इसकी शोषण व्यवस्था से पैदा हुआ।[12]

भारतीय जनमानस में उपनिवेशवादी मानसिकता का प्रभाव इतिहास लेखन में भी देखने को मिलता है। आज भी कई शिक्षित भारतीय इतिहास लेखन की विभिन्न प्रवृत्तियों को समझने में असमर्थ रहे हैं। संभवतः यह उनके द्वारा प्राप्त शिक्षा का प्रभाव है। क्योंकि जिस परिवेश में उन्हें प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा प्राप्त हुई है, वह परिवेश कहीं न कहीं औपनिवेशिक वातावरण से प्रभावित रहा है। अन्यथा यह कैसे संभव है कि हम अपने बारे जानने के लिए हर तरह से पश्चिम की ओर मुँह ताकते खड़े रहें। ऐसे लेखकों की प्रवृत्ति रही है कि वे हर अच्छी वस्तु का उद्भव पश्चिम से मानते हैं। हर शब्द की व्युत्पत्ति के लिए वे पाश्चात्य साहित्य को आधार मानते हैं, जबकि संस्कृत व लैटिन भाषा समान रूप से प्राचीन हैं, किन्तु फिर भी उन्हें लैटिन की व्युत्पत्ति ही तार्किक लगती है। यह औपनिवेशिक मानसिकता नही तो क्या है? यही नहीं वे भारतीय इतिहास लेखन में भी उन्हीं तत्वों पर बल देते हैं जो कि राष्ट्रवाद के विरूद्ध हैं। इतिहस लेखन की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति इसका एक उदाहरण है। सुमित सरकार लिखते हैं कि साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के लेखक भारतीय समाज के भीतर जारी विभाजन, गाँधीवादी कांग्रेस के सीमित एवं तेजी से घटते–बढ़ते प्रभाव, मुसलमानों के अलग होने एवं देश के विभाजन पर अधिक बल देते थे।[13]

भारतीय इतिहास लेखन में एक प्रवृत्ति यह रही है कि कतिपय इतिहासकार भारत में आर्य आक्रमण तथा द्रविड़ों को दास बनाने पर विशेष जोर देते रहे हैं। यह प्रवृत्ति साम्राज्यवादी इतिहासकारों की उस बात का समर्थन करती है, जिसके अन्तर्गत वे मानते हैं कि भारतीयों में प्राचीन काल से ही गुलामी की प्रवृत्ति रही है, किन्तु अनजाने में कई भारतीय विचारक इस तथ्य को सत्य मानने लगे और द्रविड़ मूल के लोगों को ही भारत का मूल निवासी कहने लगे। वे यह भूल जाते हैं कि यदि कोई जाति या वर्ग बाहरी है तो उस अर्थ में संपूर्ण मानव समाज ही बाहरी है, क्योंकि यह तथ्य सर्वविदित है कि मानव की उत्पत्ति अफ्रीका में हुई तथा वहीं से वह प्रवास करते हुए अन्यत्र बसा है। यही नहीं भारतीय जाति तथा वर्ण–व्यवस्था पर भी कई इतिहासकार अपेक्षा से अधिक जोर देते हैं, परन्तु वे इस तथ्य को भूल जाते हैं कि इस प्रकार की प्रवृति यूरोप के प्राक–औद्योगिक और प्राचीन समाजों में भी पायी गई है। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि भारतीय वर्ण–व्यवस्था का वैज्ञानिक आधार यह है कि यह कर्म पर आधारित रही है, यद्यपि इसका जन्म पर आधारित होना इसकी एक विकृति है, किन्तु यूरोप के उन सभ्य समाजों को क्या कहेंगे, जहाँ दासों के साथ पशुतुल्य व्यवहार किया जाता था। संयुक्त राज्य अमेरिका

का उदाहरण हमारे सामने है कि आजादी के लगभग 100 सालों के बाद भी 1865 ई0 तक वहाँ दास प्रथा बनी रही। हमारा उद्देश्य यहाँ भारतीय जाति तथा वर्ण–व्यवस्था को न्यायोचित ठहराना नहीं है, अपितु पाश्चात्य सभ्यता का गुणगान करने वालों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना है।

ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों एवं प्रचारकों की सामान्य प्रवृत्ति यह रही है कि पारंपरिक भारतीय हस्तकौशल का पतन एक दुखद किन्तु अपरिहार्य तथ्य है। भारत में भी मशीन के सामने हस्तकौशलों को वैसे ही जाना पड़ेगा जैसे कि पश्चिमी देशों से जाना पड़ा था।[14] परन्तु यहाँ प्रश्न यह है कि पश्चिम से हस्तकौशल का पतन इसलिए हुआ कि वहाँ औद्योगिक विकास हुआ, मशीनों का प्रयोग हुआ, किन्तु भारत में हस्तकौशल का पतन इसलिए हो रहा था कि जिससे इंग्लैण्ड में पनप रहे ब्रिटिश उद्योगों का विकास हो सके। इस प्रकार यूरोपीय देशों के हस्त कौशल का पतन होना स्वाभाविक था, क्योंकि वहाँ औद्योगिक विकास हो रहा था, किन्तु भारत के हस्त शिल्प का पतन ब्रिटिश उद्योगों के विकास के लिए होना दुर्भाग्यपूर्ण था।

उत्तराखण्ड के जनमानस में भी यह प्रवृत्ति रही है कि कतिपय लोग यह कहते नहीं थकते कि अगर आज अंग्रेज होते तो कर्णप्रयाग, बागेश्वर तक रेल लाइन बिछ गई होती, परन्तु प्रश्न यह है कि जब अंग्रेजों ने कर्णप्रयाग तथा बागेश्वर तक रेल लाइन के लिए सर्वेक्षण कर लिया था तो उन्होंने उसे पूरा क्यों नहीं किया? वास्तव में अंग्रेजों ने कर्णप्रयाग तथा बागेश्वर तक रेलवे लाइन का सर्वेक्षण अपने तिब्बत–चीन व्यापार को ध्यान में रखकर किया था, किन्तु जब उन्हें लगा कि उनके लिए उत्तराखण्ड से तिब्बत–चीन से व्यापार करना कैन्टन आदि बंदरगाहों की अपेक्षा अधिक खर्चीला है तो उन्होंने इसे स्थगित कर दिया। अतः यह तथ्य विचारणीय है कि कर्णप्रयाग तथा बागेश्वर तक रेलवे लाइन का निर्माण करना अंग्रेजों के लिए जनकल्याण का प्रश्न नहीं था, अपितु अपनी व्यापारिक समृद्धि का प्रश्न था।

इस प्रकार ऐसे अनेक तथ्य हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि आज भी भारतीय मानस पर औपनिवेशिकता का प्रभाव है तथा जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की कारगुजारियों को नहीं समझ पायी है। भारतीय समाज में एकता को बढ़ावा देने के बजाय सामाजिक भेदभाव, कुरीतियों को बढ़ा–चढ़ाकर कहने से क्या सामाजिक एकता स्थापित हो पायेगी। इसके लिए आवश्यक है कि इस दिशा में प्रयास किया जाय कि कैसे इन कुरीतियों को दूर किया जाय तथा सामाजिक भेदभाव का अंत कर एकता स्थापित की जाय। अतः इसके लिए औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति आवश्यक है।

सन्दर्भ

1. ग्रोवर, बी0एल0 एवं यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, एक नवीन मूल्यांकन (1707 ई0 से वर्तमान समय तक), 1995, एस0 चन्द एण्ड कंपनी लि0 रामनगर, नई दिल्ली, पृ0–419
2. ग्रोवर, बी0एल0 एवं यशपाल, उपरोक्त, पृ0–420
3. बिपिन चन्द्र, मुखर्जी, मृदुला, मुखर्जी, आदित्य, पनिकर, के0एम0 एवं महाजन, सुचिता, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय, निदेशालय, दिल्ली वि0वि0, दिल्ली, 1995, पुनर्मुद्रण 1997, पृ0–60
4. ग्रोवर, बी0एल0 एवं यशपाल, पूर्वोक्त, पृ0–661
5. कुमार, विनय, राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीय कांग्रेसः उदय और प्रेरक तत्व 1885 तक, भारत में राष्ट्रवाद, संपादक–सत्या राय, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि0वि0 दिल्ली, 1987, पृ0–04
6. सहाय, मीनाक्षी, भारत में पाश्चात्य शिक्षा का इतिहास एवं उसका प्रभाव, आधुनिक भारत का इतिहास, संपादक–रामलखन शुक्ल, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि0वि0, दिल्ली, 2010, पृ0–304
7. बिपिन चन्द्र, मुखर्जी, मृदुला, मुखर्जी, आदित्य, पनिकर, के0एम0 एवं महाजन, सुचिता, पूर्वोक्त, पृ0–124
8. सहाय, मीनाक्षी, पूर्वोक्त, पृ0–335
9. ग्रोवर, बी0एल0 एवं यशपाल, पूर्वोक्त, पृ0–663
10. सहाय, मीनाक्षी, पूर्वोक्त, पृ0–336
11. सहाय, मीनाक्षी, पूर्वोक्त, पृ0–337–338
12. सहाय, मीनाक्षी, पूर्वोक्त, पृ0–340–341
13. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत 1885–1947, हिन्दी अनुवाद–सुशीला डोभाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पुनर्मुद्रण 1997, पृ0–21
14. सरकार, सुमित, उपरोक्त, पृ0–46